PAGE NO.:
DATE:

आज का समय और कबीर :

कबीर हिन्दी के महान कवियों में से एक है। उत्तर भारत की हिन्दी भाषी जनता में तुलसी के उपरान्त यदि किसी अन्य कवि का काव्य लोगों की जबान पर चढ़ा हुआ है, तो वह कबीर ही हैं। कबीर की साखियाँ, उनके पद लोगों को कंठस्थ हैं, जिन्हें वे अनेक अवसरों पर उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत करते हैं। कबीर को जो लोकप्रियता प्राप्त हुई उसका मूल कारण यह है कि उनके काव्य में अनुभूति की सच्चाई और अभिव्यक्ति का खरापन है। उन्हें जो अच्छा लगा उसका खुलकर समर्थन किया और जो उन्हें बुरा लगा उसका विरोध उन्होंने निर्भीकता से किया। उनका यह खरा स्वभाव लोगों को पसन्द आया और इसीलिए वे जनता के कंठहार बन गए।

अभी कुछ समय से कवियों एवं साहित्यकारों की प्रासंगिकता का प्रश्न उठाया जाने लगा है। महान कवियों एवं साहित्यकारों के सम्बन्ध में इस प्रश्न को उठाने की आवश्यकता नहीं है। काव्य रूप, शैली, भाषा-रूप बदल जाते हैं, परन्तु महान कवियों के काव्य का कथ्य-तथ्य जिन तथ्यों, समस्याओं एवं सत्यों का दर्शन कराता है, उसकी प्रासंगिकता कभी समाप्त नहीं होती क्योंकि वे सत्य मानव जीवन के मूलभूत सत्य होते हैं। क्या वाल्मीकि और व्यास कभी अप्रासंगिक हो सकते हैं? उन्होंने मानव के

जिन आदर्शों का स्वप्न देखा है, उन्हें प्राप्त करने में अभी मनुष्य जाति को न जाने कितने युग लग जायेंगे।

भले ही कबीर का जन्म आज से 600 वर्ष पूर्व हुआ हो, किन्तु उनकी शिक्षायें आज भी प्रासंगिक हैं। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि आज उनकी शिक्षाओं की आवश्यकता तत्कालीन युग की अपेक्षा अधिक है। उस समय हिन्दू-मुस्लिम जनता आपस में मन्दिर-मस्जिद के प्रश्न पर संघर्षरत रहती थी। धर्म के ठेकेदार धार्मिक उन्माद के चूल्हे पर स्वार्थ की रोटियाँ सेंकते थे, वैसा ही वर्तमान समय में हो रहा है। वोटों की कलुषित राजनीति ने इसे और भी गन्दा कर दिया है। मन्दिर-मस्जिद के नाम पर साम्प्रदायिक दंगे तब भी होते थे और आज भी हो रहे हैं। अयोध्या की बाबरी मस्जिद का ढाँचा बताते हुए तोड़ दिया गया और सारे देश में उथल-पुथल मच गई। निश्चय ही कबीर की शिक्षायें आज के इस माहौल में अधिक प्रासंगिक हैं। लगता तो यह है कि विगत 600 वर्षों में हमारी मानव सभ्यता ने रंच मात्र भी प्रगति नहीं की है। वैज्ञानिक उपकरणों तथा सुख-सुविधा के साधनों को जुटाकर भले ही हम प्रगति का दावा करें, किन्तु हम मानवता के मोर्चे पर रंचमात्र भी प्रगति नहीं कर सके हैं। आज भी समाज में धार्मिक विद्वेष व्याप्त है, जाति-प्रथा ने अपनी जड़ें

को मजबूत किया है, समाज मे विषमता बढ़ी है, समरसता वहाँ दिखाई नहीं देता। ऊँच-नीच की भावना वर्तमान समय मे खान-पान के स्तर पर चाहे समाप्त हो रही है, किन्तु विवाह सम्बन्धों मे आज भी जाति-वर्ण ही प्रमुख है।

समाज मे पाखण्ड अब भी व्याप्त है, आचरण को मात्रा घटने के स्थान पर बढ़ा ही है। छल-कपट, हिंसा, अज्ञान और विद्वेष ने समाज को खोखला कर दिया है, अतः कबीर की प्रासंगिकता वर्तमान सन्दर्भों मे और भी बढ़ गई है। कबीर ने पाखंड, बाह्याचार, अंध-विश्वास एवं रूढ़ियों पर कुठाराघात किया। ऊँच-नीच के भेद को समाज का कोढ़ बताते हुए उन लोगों को आड़े हाथों लिया जो ऊँच-नीच के भेद की दीवारें खड़ी करके अपना स्वार्थ-साधन करने मे लगे थे। छल-कपट, असत्य, हिंसा, अज्ञान, भ्रम का डटकर विरोध किया तथा निश्छलता, सत्य, अहिंसा, ज्ञान एवं विवेक का मार्ग दिखाया। क्या मानव-समाज से पाखंड, अन्ध-विश्वास, रूढ़ियाँ आदि समाप्त हो गया है? क्या हिंसा, असत्य, अज्ञान एवं भ्रम मे पड़ी मानव जाति आज भी नहीं भटक रही है? फिर कबीर अप्रासंगिक क्यों? केवल इसलिए कि वे प्राचीन युग मे उत्पन्न हुए थे और आज विज्ञान का युग है परन्तु जब तक समाज मे वे दोष और अभाव रहेंगे जिनके विरुद्ध कवि रूप मे कबीर ने संघर्ष किया तब तक कबीर की प्रासंगिकता पर प्रश्न चिन्ह

नहीं मिटाया जा सकता।

कबीर ने सर्व-धर्म समभाव का सन्देश दिया। हिन्दुओं और मुसलमानों के उन दोषों को पूरी निर्भीकता से उजागर किया, जिनके आधार पर वे एक-दूसरे के शत्रु बन रहे थे। क्या आज हिन्दू-मुस्लिम समस्या सुलझ गई है? यदि नहीं तो कबीर आज भी प्रासंगिक है।

कबीर ने भक्ति का भी जो पथ दिखलाया उसको ध्यान में रखने पर भी कबीर की प्रासंगिकता में कोई कमी नहीं आती। कबीर ने किसी विशेष सम्प्रदाय या पूजा-पद्धति का प्रचार नहीं किया। इसीलिए उन्होंने परमेश्वर के लिए राम, कृष्ण, केशव, करीम, अल्लाह, खुदा, रहमान, गोविन्द, माधव आदि सभी प्रचलित नामों को ग्रहण किया और शुद्धाचरण तथा निरभिमानता पर आधारित भक्ति का सन्देश दिया। विज्ञान और बौद्धिकता के आतंक से पीड़ित और अतृप्त मानवता को क्या कबीर का भक्ति-संदेश शान्ति और तृप्ति प्रदान नहीं कर सकता? कबीर हिन्दी के भक्ति-युग में इस दृष्टि से सर्वाधिक ग्राह्य व्यक्तित्व हैं। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि साहित्य अपनी रसात्मकता आह्लादकता और रमणीयता के कारण कभी अप्रासंगिक नहीं होता। सम्भवतः साहित्य में और अखबार में मोटा अन्तर यही है किसी समय बीतने के

बाद अखबार की खबरें व्यर्थ हो जाती है पढ़ने के बाद वे अप्रासंगिक, अस्वीकार हो जाती है। पढ़े हुए अखबार को न तो कोई दुबारा पढ़ता है और न उसकी कोई प्रासंगिकता ही रहती है जबकि साहित्यिक रचनाएं कभी अप्रासंगिक नहीं होती। हम उन्हें जितना बार पढ़ते हैं उनमें से उतना ही नवीन अर्थबोध होता है तथा वे उतनी ही रुचिकर लगती है, इसलिए साहित्य सदैव प्रासंगिक रहा है। वह सर्वकालिक, सर्वभौमिक तथा सार्वजनीन है इसलिए किसी एक देश के कवि या साहित्यकार केवल उस देश के लोगों को ही प्रिय नहीं होते अपितु वे प्रत्येक सहृदय को प्रभावित करते हैं। क्या कोई कह सकता है कि कालिदास केवल भारत के कवि है या शेक्सपीयर को केवल यूरोप के लोग पसन्द करते हैं? साहित्यकार देश काल की सीमा में बंधा नहीं होता इसलिए वह प्रत्येक व्यक्ति को अपनी रचना के माध्यम से आनन्दित करता है। कबीर भी एक ऐसे ही सर्वकालिक कवि है जिनकी रचनाएं न कभी अप्रसंगिक थी, न है और न होंगी।

आज हमारे समाज में जो विशृंखलता दिखाई दे रही है, तथा हम लोग जिस धार्मिक विद्वेष के माहौल में जीवनयापन कर रहे हैं; उसमें कबीर की शिक्षाएं अधिक प्रभावी भूमिका का निर्वाह कर सकती है। नैतिक मूल्यों का क्षरण आज जिस तीव्रता से हो रहा है तथा मानवीय मूल्यों का जो विघटन समाज

मे दिखाई दे रहा है इसके विषाक्त प्रभाव को कम करने के लिए कबीर की अमृतवाणी की आवश्यकता बराबर अनुभव की जा रही है। किसी स्थिति मे कबीर की प्रासंगिकता पर कोई प्रश्न चिन्ह नही लगाया जा सकता वे कल भी प्रासंगिक थे, आज भी पारसंगिक है और आनेवाले कल मे भी प्रासंगिक रहेंगे, यह निःसंकोच कहा जा सकता है।

कलियुग के पापो ने सब धर्मो को ग्रस लिया। सभी लोग मोह के वश हो गये। कलियुग मे न वर्णधर्म रहता है न चारो आश्रम रहते है। सब पुरुष स्त्री वेद के विरोध मे लगे रहते है। जिसको जो अच्छा लग जाय वही मार्ग है जो दूसरे का धन हरण कर लेता है वही बुद्धिमान जिसके बड़े बड़े नख और लंबी लंबी जटाएं है वही कलियुग मे तपस्वी है। हे गोसाईं सभी मनुष्य स्त्रियो के वश मे है शिष्य और गुरु मे बहरे और अंधे का सा हिसाब होता है। माता-पिता बालको को वही धर्म सिखलाते है जिससे पेट भरे। शूद्र ब्राह्मणो से विवाद करते है। शूद्र नाना प्रकार के जप, तप और व्रत करते है तथा ऊँचे आसन पर बैठकर पुराण कहते है। सन्यासी बहुत धन लगाकर घर सजाते है। यहाँ तपस्वी धनवान हो गये और गृहस्थ दरिद्र। गुण मे दोष लगानेवाले बहुत है पर गुणी कोई भी नही है। मनुष्य रोगो से पीडीत है भोग कही नही है। कलियुग मे सब योगी और विज्ञानी होते है। कलियुग मे न तो योग और यज्ञ है और न ज्ञान है। श्री राम जी का गुणगान ही एकमात्र आधार है। धर्म के चार चरण प्रसिद्ध है जिसमे से कलि मे एक चरण ही प्रधान है दान कवि और पंडित ऐसी नीति कहते है कि दुष्ट से न कलह ही अच्छा है न प्रेम ही। दुष्ट को कुत्ते की तरह दूर से ही त्याग देना चाहिए।

जो मूर्ख गुरु से ईर्षा करते है वे करोड़ो युगो तक रौरव नरक मे पड़े रहते है। जब तक पार्वती के पति शंकर के चरण कमलो को मनुष्य नही भजते तब तक उन्हे न तो इहलोक और परलोक मे सुख शांति मिलती है और न उनके तापो का नाश होता है। मै न योग जानता हूँ न जप और न पूजा ही, मै तो सदा सर्वदा आपको ही नमस्कार करता हूँ बुढ़ापा तथा जन्म के दुःखसमूहो से जलते हुए मुझ दुःखी को दुःख से रक्षा कीजिए मै आपको नमस्कार करता हूँ। जो झूठ बोलता है और हँसी दिल्लगी करना जानता है कलियुग मे वही गुणवान कहा जाता है। जो आचारहीन है और वेद मार्ग को छोड़े हुआ है कलियुग मे वही ज्ञानी और वही वैराग्यवान् है। जो अमंगल वेष और अमंगल भूषण धारण करते है और भक्ष्य - अभक्ष्य सब कुछ खा लेते है वे ही योगी है वे ही सिद्ध है और वे ही मनुष्य कलियुग मे पूज्य है। सभी लोग परायण काम और लोभ मे तत्पर और क्रोधी होते है। अभागिनी स्त्रिया गुणो के धाम सुंदर पति को छोड़कर पर पुरुष का सेवन करती है। सुहागिनी स्त्रीयाँ तो आभूषण से रहित होती है पर विधवाओ के नित्य नये श्रृंगार होते है जो गुरु शिष्य का धन हरण करता है पर शोक नही

हरण करता वह घोर नरक मे पडता है। स्त्री पुरुष ब्रह्मज्ञान के सिवा दूसरी बात नही करते पर वे लोभवश कौडियो के लिए ब्राह्मण और गुरु की हत्या कर डालते है। कुलवती और सती स्त्री को पुरुष घर से निकाल देते है और अच्छी चाल को छोडकर घरमे दासी को ला रखते है। धनी लोग मलिन होने पर भी कुलीन माने जाते है। जो वेदो और पुराणो को नही मानते कलियुग मे वे ही हरिभक्त और सच्चे संत कहलाते है। कलियुग मे बार-बार अकाल पडते है अन्न के बिना सब लोग दुःखी होकर मरते है। बिना ही कारण अभिमान और विरोध करते है। दस-पाँच वर्ष का थोडा सा जिवन है परंतु घमंड ऐसा है मानो प्रलय होने पर भी उनका नाश नही होगा। कलि काल ने मनुष्य को बेहाल कर डाला। कोई बहिन बेटी का भी विचार नही करता लोगो मे न संतोष है न विवेक है और न शीतलता है जाति कुजाति सभी लोग भीक माँगनेवाले हो गये। सत्ययुग त्रेता और द्वापर मे जो गति पुजा, यज्ञ और योग से प्राप्त होती है वही गति कलियुग मे लोग केवल भगवान के नाम से पा जाते है। द्वापर मे श्री रघुनाथ जी के चरणो की पुजा करके मनुष्य संसार से तर जाते है दूसरा कोई उपाय नही है कलियुग मे न तो योग और यज्ञ है और न ज्ञान ही है श्री राम जी का गुणगान ही एकमात्र आधार है.

कबीर का समाज दर्शन

कबीर का प्रादुर्भाव ऐसे समय में हुआ जब समाज अनेक बुराइयों से ग्रस्त था। छुआछूत, अन्ध-विश्वास, रूढ़िवादिता, मिथ्याचार, पाखण्ड का बोलबाला था और हिन्दू-मुसलमान आपस में झगड़ते रहते थे। धार्मिक पाखण्ड अपनी चरम सीमा पर था और धर्म के ठेकेदार स्वार्थ की रोटियां धार्मिक उन्माद के चूल्हे पर सेक रहे थे। धार्मिक कट्टरता और संकीर्णता के कारण समाज का सन्तुलन बिगड़ रहा था, कुरीतियाँ एवं कुप्रथाओं का बोलबाला था तथा सामाजिक विषमता बढ़ती जा रही थी। उस समय किसी ऐसे महात्मा या समाज सुधारक की आवश्यकता थी जो समाज में व्याप्त इन बुराइयों पर निर्भीकता से प्रहार कर सके दोनों धर्मों के अनुयायियों को बिना किसी भेद भाव के फटकार सके और सदाचरण का उपदेश देकर सामाजिक समरसता की स्थापना करे। कबीर इस आवश्यकता की पूर्ति करते थे।

कबीर ने विभिन्न क्षेत्रों में समाज सुधार का स्तुत्य प्रयास किया। उनके द्वारा किए गए इस प्रयास को निम्न शीर्षकों में समझाया जा सकता है।

1) राम - रहीम की एकता का प्रतिपादन :

कबीर चाहते थे कि हिन्दू - मुसलमान प्रेम एवं भाईचारे की भावना से एक साथ मिलकर रहे। उन्होंने राम और रहीम की एकता स्थापित करते हुए बताया कि ईश्वर दो नहीं हो सकते। यह वैमनस्य भ्रम है जो खुदा को परमात्मा से अलग मानते हैं -
"दुइ जगदीस कहां ते आया। कहु कौने भरमाया।।"
मुसलमानों की भाँति उन्होंने मूर्तिपूजा का खण्डन किया, एकेश्वरवाद को मान्यता दी और अवतारवाद का विरोध किया। वे कहते हैं कि राम दशरथ-पुत्र न होकर निर्गुण, निराकार ब्रह्म हैं।

दसरथ सुत तिहुं लोक बखाना। राम नाम का मरम है आना।

2) जाति-प्रथा का खण्डन :

कबीर भक्त और कवि बाद में हैं, समाजसुधारक पहले हैं। उनकी कविता का उद्देश्य जनता को उपदेश देना और उसे सही रास्ता दिखाना है। उन्होंने जो गलत समझा उनका निर्भीकता से खण्डन किया। अनुभूति की सच्चाई और अभिव्यक्ति की ईमानदारी कबीर की सबसे बड़ी विशेषता है। कबीर ने समाज में व्याप्त जाति-प्रथा, छुआछूत एवं ऊँच-नीच की भावना पर प्रहार करते हुए कहा कि जन्म के आधार पर कोई ऊँचा नहीं होता, ऊँचा

वह है जिसके वर्ण अलग है —

ऊँचे कुल का जनमिया करनी ऊँच न होय।
सुबरन कलस सुरा भरा साधू निन्दत सोय।

कबीर का मत है कि जब ब्राह्मण और शूद्र की रगो मे बहने वाले खून मे कोई भेद नहीं है तो फिर उनमें जातिगत भेद क्यो हो। क्या ब्राह्मण की नसो मे दूध बहता है, रक्त नही बहता? वे पूछते है :

हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूद।
तुम कैसे बामन पाण्डे हम कैसे सूद।

अगर ब्राह्मण अपने को ऊंचा समझते हैं तो यह उनकी भूल है। चाहे ब्राह्मण हो या शूद्र दोनो इस पृथ्वी पर माँ के पेट से ही जन्म लेते है, फिर उनमे जातिगत विषमता क्यो मानी जाय?

जो तू बांमन बंभनी जाया।
आन वाट ह्वै क्यो नही आया।।

वस्तुतः वे जन्म से नही कर्म से जाति का अस्तित्व मानते है।

3) मूर्ति-पूजा का विरोध :-

कबीर ने समाज मे व्याप्त मूर्ति-पूजा का डटकर विरोध किया। वे सामान्य जनता को समझाते हुए कहते है कि मूर्ति-पूजा से भगवान नही मिलते, इससे तो अच्छा है कि घर की चाकी को पूजा जाए।

पाहन पूजै हरि मिलै तो मैं पूजूं पहार।
घर की चाकी कोई न पूजै पीस खाय संसार॥

कबीर दुनिया के मूर्ति-पूजा के पागलपन पर प्रहार करते है और कहते है कि इन मूर्तियो मे अगर देवता होता तो वह स्वयं को मूर्ति भंजकों से बचा लेता, किन्तु ऐसा न हो सका। इसलिए इन मूर्तियो को पूजना छोड दो और कर्म की पूजा करो। अच्छा है कि तुम उस चक्की को पूजो जिसका पिसा आटा तुम्हारा पेट भरता है।

दुनिया ऐसी बावरी पाथर पूजन जाय।
घर की चकिया कोइ न पूजे जेहि का पीसा खाय॥

4) जीव हिंसा का विरोध :-

कबीर ने धर्म के नाम पर व्याप्त हिंसा का विरोध किया। हिन्दुओं मे शाक्तो और मुसलमानो मे कुर्बानी देने वालो को उन्होने निर्भीकता से फटकारा और

कहा कि दिन में रोजा रखने वाले रात को गाय काटते है। इस कार्य से भला खुदा कैसे प्रसन्न हो सकता है :

दिन में रोजा रहत है रात हनत है गाय।
यह तो खून वह बंदगी कैसे खुशी खुदाय ॥

गाय को कबीर माता कहते है जो हमें दूध पिलाती है। उसका वध करना माता का वध करने जैसा है :

जाको दूध धाइ करि पीजै। ता माता को वध क्यूं कीजै ॥

जीव हिंसा के विरोधी कबीर कहते है कि लोगों को यह देखकर सबक लेना चाहिए। कि बकरी तो केवल घास-पात खाती है और इस पात के कारण उसकी खाल खींची जाती है किन्तु जो व्यक्ति बकरी को खाते है, उनकी क्या दशा होगी :

बकरी पाती खात है ताकी काढ़ी खाल।
जे नर बकरी खात है तिनके कौन हवाल ॥

5) हिन्दू - मुस्लिम पाखण्ड का खण्डन :

कबीर ने हिन्दू और मुसलमान दोनो को फटकारा। वे काक और हिन्दुओं के तथाकथित धर्म,

तिलक का विरोध करते है तो दूसरी ओर रोजा, नमाज, अजान का। वे कहते है कि माला फेरने से नहीं, मन की शुद्धि से ईश्वर प्रसन्न होता है:

माला फेरत जुग गया गया न मन का फेर।
कर का मनका डारि कै मन का मनका फेर॥

मुसलमान दिन भर रोजा रखकर रात को यदि गोहत्या करके ईश्वर को प्रसन्न करना चाहे तो यह निरा भ्रम है। ईश्वर इससे प्रसन्न होने वाला नही है। वे समाज मे व्याप्त बुराइयो के कटु आलोचक है किन्तु उनकी आलोचना सुधार भावना से प्रेरित है। वे साफ कहते है कि हिन्दु और मुसलमान दोनो को सही मार्ग नही मिला —

अरे इन दोउन राह न पाई।
मुसलमान के पीर औलिया मुरगी मुरगा खाई।
खाला केरी बेटी ब्यहै घर ही मे करै सगाई॥
हिन्दु अपनी करै बड़ाई गागर छुअन न देही।
वेश्या के पायन तर सोवै यह देखो हिंदुआई॥

वे तो साफ कहते है कि 'सो हिन्दु सो मुसलमान जाका दुरूस रहै ईमान।' जिसका कोई ईमान नही वह न हिन्दु है, न मुसलमान। कबीर ने वैमनस्य को दूर कर समता स्थापित करने का प्रयास किया। परोपकार, सेवा, क्षमा, करुणा, दान, धैर्य, अहिंसा, सत्संग

आदि का प्रचार करके वे शुद्ध आचरण माँग सहित -ता पर बल देते दिखाई पड़ते है। कबीर सामाजिक समन्वय पर बल देते हैं। वे चाहते थे कि हिन्दू-मुसलमानों में भाई-चारे की भावना उत्पन्न हो। वे लोभ तथा अन्धविश्वास समाप्त करना चाहते थे। कबीर नैतिक मूल्यों के प्रचारक होने रूप काव्य थे जिसे जनता के सच्चे पथ प्रदर्शक कहा जा सकता है। जो मार्ग उन्होंने जनता के आचरण की पवित्रता का उचित बताया उस पर स्वयं चलकर भी दिखाया। उन्होंने व्यक्ति के सुधार पर इसलिए बल दिया क्योंकि व्यक्तियों से ही समाज बनता है। यदि किसी समाज में अच्छे आचरण वाले व्यक्ति प्रचुरता से होंगे तो समाज स्वयमेव सुधर जायेगा। कबीर का समाज दर्शन माँग उनकी शिक्षाएं आज भी प्रासंगिक है।

कबीर - (1398-1518 ई.)

कबीर की भक्ति भावना :

भक्तिकाल की निर्गुण धारा के सन्त कवि कबीर ने नाथ पन्थियों की हठयोग साधना में "भक्ति भावना" का समावेश कर उसकी नीरसता को सरसता में परिवर्तित कर दिया। भक्त कबीर रमानन्द के शिष्य थे तथा वैष्णवों के प्रति आदरभाव रखते थे। भक्ति भावना के लिए द्वैत आवश्यक है जो सगुणोपासन में ही सम्भव है क्योंकि निर्गुणोपासक तो आत्मा और परमात्मा के अद्वैत पर अधिक बल देते हैं इसलिए कबीर की भक्तिभावना सूर तुलसी जैसी नहीं है। कबीर यह स्वीकार करते हैं कि भवसागर से पार जाने का साधन भक्ति है। इस भक्ति के अभाव में ही मानव 'भव-जल' में डूबता है -

भगति बिन भौजलि डूबत है रे।

भक्ति से भवसागर भी गोपद के समान सुगमता से तरने योग्य हो जाता है -

भाव भगति हित बोहिथा सद्गुरु खेवन हार।
अलप उदिक तब जाणिये जब गोपद खुर विस्तार॥

संसार रूपी सागर से पार जाने के लिए भक्ति भाव ही जहाज है जिसके खेवनहार (मल्लाह) सद्गुरु है। भक्ति से भव सागर 'गोपद' से बने गड्ढे में और जल जैसा सुगमता से पार करने योग्य हो जाता है।

कबीर की भक्ति भावना का विवेचन निम्न शीर्षकों में किया जा सकता है —

1) नामस्मरण :-

भक्तों ने प्रभु नाम स्मरण की महत्ता का प्रायः गुणगान किया है। कबीर भी 'रामनाम' की महिमा का बखान करते हैं। वे तो यहाँ तक कहते हैं कि मेरे लिए तो 'नाम' ही खेती बारी है, नाम ही मेरी धन सम्पत्ति है, नाम जप ही मेरी सेवा पूजा है तथा नाम ही मेरा बन्धु-बान्धव है। यथा

नाँउ मेरी खेती नाँउ बारी। भगति करौं जन सरनि तुम्हारी।
नाँउ मेरे माया नाँउ मेरी पूंजी। तुमहिं छाँड़ि जानौं नहिं दूजी॥
नाँउ मेरे सेवा नाँउ मेरे पूजा। तुम्ह बिन और न जानौ दूजा॥

कबीर का मत है कि एकाग्रचित्त होकर जब ईश्वर के नाम का जप किया जाता है, तभी वह फलदायी होता है। वे ऐसे नाम स्मरण का विरोध करते हैं जिसमें मन दसों दिशाओं में घूमता रहता है —

माला तो कर मे फिरै जीभ फिरै मुख माँहि।
मनुआ तो दस दिसि फिरै सो तो सुमिरन नाँहि।

2) आचरण की शुद्धता :-

कबीर की भक्तिभावना मे सदाचरण पर बल दिया गया है। वे सदाचार को भक्ति का प्रमुख अंग स्वीकारते है। आचरण की शुद्धता के लिए व्यक्ति को सम्पूर्ण विकारों का परित्याग करना होगा। विकारों के जनक है — कंचन और कामिनी — इनके त्याग से ही सदाचार का मार्ग प्रशस्त होता है। वे कहते है कि नारी के कारण ही व्यक्ति भक्ति मुक्ति एवं ज्ञान मे प्रवेश नही कर पाता —

नारि नसावै तीनि सुख जा नर पासे होय।
भगति मुकति निज ज्ञान मे पैसि न सकई कोय॥

कबीर ने आचरण की शुद्धता के लिए कुसंग का त्याग करने एवं सत्संग करने पर बल दिया है। कबीर का मत है कि जब तक मन मे काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह; ईर्ष्या, द्वेष आदि विकार भरे है तब तक हृदय मे भगवान की भक्ति नही आ सकती। भक्ति मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति को अहंकार एवं कपट का भी परित्याग करना पड़ता है। 'मैं' का भाव ही अहंकार है 'मैं' के समाप्त होने पर अहंकार, अर्थात परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है।

जब मै था तब हरि नहीं अब हरि है मै नाहि।
सब अंधियारा मिट गया दीपक देख्या माहि॥

भक्ति पथ के पथिक को कपट त्यागना पड़ता है। यदि कोई कपटपूर्ण भक्ति करता है तो अन्त मे उसे बहुत दुख झेलना पड़ता है—

कपट की भगति करै जिन कोई।
अन्त की बेर बहुत दुख होई॥

3 प्रपत्ति भाव :-

'प्रपत्ति' का अर्थ है — शरणागति एवं आत्मनिवेदन। कबीर भगवान को सर्वशक्तिमान मानकर उसकी शरण मे जाकर अपनी रक्षा की प्रार्थना करते है। यथा —

कबीर तेरी सरनि आया, राखि लेहु भगवान।

मृत्यु का भय भी ईश्वर की शरण मे जाने पर ही छूट पाता है। यथा —

भौ सागर अथाह जल तामै बोहित राम अधार।
कहै कबीर हम हरि सरन, तब गोपद खुर विस्तार॥

ईश्वर की शरण मे जाने पर भव सागर को

अर्थात जल गोपद से बने गड्ढे में भरे जल की भाँति सुगमता से पार किया जा सकता है।

4) ईश्वर में विश्वास :-

कबीर को भगवान की सर्वशक्तिमत्ता में विश्वास है। श्रद्धा और विश्वास भक्ति के अनिवार्य तत्व है। कबीर को पूरा विश्वास है कि परमात्मा पूर्ण समर्थ है। वह राई को पर्वत तथा पर्वत को राई करने की सामर्थ्य रखता है। यथा -

साँई सूं सब होत है बन्दे पै कछु नाँहि।
राई पै परबत करै, परबत राई माँहि।।

कबीर यह स्वीकारते है कि मानव परमात्मा की कृपा से ही कुछ कर सकने योग्य बनता है। कबीर को 'कबीर' बनाने वाला भी वही है ____

ना किछु किया न करि सक्या, ना करणे जोग सरीर।
जो किछु किया सो हरि किया, ताथैं भया कबीर कबीर।।

कबीर का यह ईश्वर विश्वास उनकी भक्ति का एक प्रमुख अंग है।

5) वैराग्य भावना :-

जो भक्ति चाहता है, उसे संसार के प्रति विरक्त भाव अपने मन में जगाना आवश्यक है। वैराग्य का तात्पर्य संसार को छोड़कर — ले निवास करना नहीं है। संसार में रहते हुए भी मन में सन्तोष वृत्ति होना, विषय भोगों के प्रति अनासक्त होना, आशा — से मुक्त होना ही वैराग्य है। जब भक्त भगवान की ओर उन्मुख हो जाता है तो सांसारिक विषयों के प्रति विरक्ति स्वतः जाग्रत हो जाती है। कबीर की मान्यता है कि आशा और तृष्णा जन्म-जन्मान्तर तक पीछा करती रहती है —

माया मरी न मन मुआ मरि मरि जात सरीर।
आसा त्रिस्ना ना मरी यों कहि गया दास कबीर ॥

कबीर संसार के रिश्ते नातों को क्षण भंगुर मानते हैं। ये सारे सम्बन्ध स्वार्थमय हैं ऐसा कहकर कबीर वैराग्य जगाने का प्रयास करते हैं —

काकी माता पिता कहु काको कौन पुरुष की जोई।
घट फूटे कोउ बात न पुछे काढ़हु काढ़हु होई ॥

6) माधुर्य भाव की भक्ति :

माधुर्य भाव की भक्ति को मधुरा

भक्ति या प्रेम लक्षणा भक्ति कहा जाता है। भक्त स्वयं को जीवात्मा मानें भगवान को परमात्मा मानकर दाम्पत्य प्रेम की अभिव्यक्ति जहाँ करता है। वहाँ मधुरा भक्ति मानी जाती है। जीवात्मा परमात्मा के विरह का अनुभव करती हुई उससे मिलन की आशा करती है। कबीर की आत्मा रूपी सुन्दरी बार-बार 'हरि' को अपना 'प्रियतम' मानती हुई कहती है कि 'हरि' के बिना मैं रह नहीं सकती -

हरि मेरा पीव हरि मेरा पीव।
हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव।

आत्मा परमात्मा के मिलन के आनन्द का वर्णन भी कबीर ने विवाह के सांगरूपक द्वारा किया है-

दुलहिनि गावहु मंगलचार।
मोरे घर आये हो राजा राम भरतार
तन रत करि मैं मन रत करिहों पंच तत्व बराती।
रामदेव मोरे पाहुनै आये मैं जोबन मैमाती।

आत्मा का जीवात्मा के प्रति विरह भाव कबीर ने बड़े मनोयोग से व्यक्त किया है। प्रियतम परमात्मा की बाट जोहते-जोहते आँखों में झाँई पड़ गई। राम को पुकारते हुए जीभ में छाला पड़ गया -

आँखड़ियाँ झाँई पड़ी पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड़्या राम पुकारि पुकारि ॥

7) दास्य भाव की भक्ति –

तुलसी की भक्ति जिस प्रकार दास्य भाव की है, उसी प्रकार कबीर की भक्ति भावना मे भी दास्य भाव दिखाई पड़ता है। वे प्रभु को स्वामी मान स्वयं को दास, सेवक या गुलाम कहते है। यथा

i) मैं गुलाम मोहि बेचि गोसाईं
ii) जो सुख प्रभु गोविंद की सेवा, सो सुख राज न लहिये।
iii) दास कबीर भजि सारंग पान, देहु अभय पद माँगो दान ॥

कबीर भले ही निर्गुण मार्गी भक्त कवि हो, किन्तु उनमे दास्य भाव की भक्ति दिखाई देती है।

8) नवधा भक्ति का स्वरूप :-

कबीर के काव्य मे नवधा भक्ति के तत्व – श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्म निवेदन – भी उपलब्ध होते है। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत है —

नाम स्मरण - राम जपौ जिय ऐसे ऐसे। ध्रुव प्रह्लाद जप्यौ हरि जैसे।

पाद सेवन - राम चरन मन भाया रे।

अर्चन - ऐसी आरती त्रिभुवन तारै। तेज पुंज तहँ प्रान उतारै॥

वन्दन - बन्दे तोहि बंदिगी सौं काम। हरि बिन जाँनि और हराम॥

दास्य - सो सेवक जो लाया सेव। तिनहीं पाये निरंजन देव।

आत्म निवेदन - जो है जाका भावता जदि तदि मिलसी आइ। जाकौं तन मन सौंपिया सो कबहू छांड़ि न जाइ॥

भक्त अपने सर्वस्य का समर्पण प्रभु के प्रति करता हुआ कामनाहीन हो जाता है। उसे अपने लिए कोई आकांक्षा नहीं रहती। स्पष्ट है कि कबीर के काव्य में नवधा भक्ति के तत्व प्रचुरता से उपलब्ध होते हैं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि कबीर एक सच्चे भक्त थे। वे भक्ति की महिमा गाते नहीं अघाते। भक्तिहीन जीवन को वे व्यर्थ बताते हैं ऐसा व्यक्ति बार-बार जन्म लेकर संसार में आता-जाता रहता है।

भक्तिहीन जीवन कछु नाही। उतपाति परले लहुरि समाही।

ये मानव को समझाते है कि अभी समय है इन्द्रियाँ शिथिल नहीं हुई हैं अतः भक्ति कर ले क्योंकि जब अन्त समय आयेगा तब इन्द्रियाँ शिथिल हो जायेगी और भक्ति नही हो पायेगी।

जब लगि विकल भई नहिं बानी। भज लेहि मन सारँग पानी॥

निश्चय ही कबीर एक उच्चकोटि के भक्त थे। ईश्वर के प्रति अटूट श्रद्धा एवं विश्वास इनको भक्ति भावना का प्रमुख तत्व माना जा सकता है।

जायसी की काव्य दृष्टि

जायसी सूफी काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि हैं। उनका महाकाव्य 'पद्मावत' अवधी भाषा मे एक उत्कृष्ट का साहित्यिक ग्रंथ है जिसमे जायसी ने अपनी और कल्पना शक्ति एवं उत्कृष्ट प्रतिभा के पर इतिवृत्तात्मकता एवं रसात्मकता का अद्भुत समन्वय किया है। जायसी का पद्मावत कई दृष्टियों से एक उल्लेखनीय महाकाव्य माना जाता है। इसका वस्तु वर्णन बेजोड़ है तथा प्रकृति चित्रण अनुपम है। भाव, रस एवं श्रृंगार निरूपण की दृष्टि से भी यह एक उत्कृष्ट का काव्यग्रंथ है। जायसी की काव्य दृष्टि की समीक्षा निम्न शीर्षकों मे की जा सकती है:

1) सौन्दर्य चित्रण :

जायसी ने पद्मावती के रूप सौन्दर्य का मनोहारी चित्रण किया है। वह अलौकिक सौन्दर्य से युक्त एक ऐसी युवती है जिसके साँचवकण रेशमी केश सर्पों जैसे है। जब वह अपने जुड़े को खोलकर बाल झड़ती तो केशो की श्यामता के कारण सर्वत्र अन्धकार हो जाता है।

भँवर केस वह मालति रानी। बिसहर लुरहिं लेहिं अरघानी
बेनी छोरि झार जौं बारा। सरग पतार होइ अँधियारा।।

नेत्र बंकिम है, नासिका खड्ग, तोते की चोंच से भी अधिक नुकीली और सुन्दर है। पुष्प इसी आशा मे सुगन्ध विकीर्ण करते है कि शायद वह हमे अपनी नासिका से लगा ले। लालिमापूर्ण अधर अमृत रस से भरे हुए है जिन्हे देखकर बिम्बाफल भी लज्जित हो जाते है:

अधर सुरंग अमिअ रस भरे। बिम्ब सुरंग लाजि बन फरे।

जायसी ने नायिका के नख-शिख सौन्दर्य का अलंकारिक वर्णन किया है। उनके उपमान परम्परित भले ही हो, किन्तु सौन्दर्य वर्णन मे नवीनता परिलक्षित होती है।

२) वस्तु वर्णन :

सूफी कवियो ने विभिन्न प्रकार के वस्तु वर्णनो द्वारा मानवीय ज्ञान मे अभिवृद्धि की है। पदमावत मे वस्तु वर्णनो की बहुलता है। उसमे वन-उपवन, खाद्य सामग्री, समुद्र वर्णन, उत्सव, लोकाचार, यात्रा-शकुन, जलक्रीडा, नख शिख वर्णन आदि का विशद चित्रण है। जायसी का युद्ध वर्णन अन्य सभी वर्णनो की अपेक्षा अधिक मर्मस्पर्शी एवं सजीव है। दोनो सेनाओ के आक्रमण, हाथियो की गर्जना, विभिन्न अस्त्रशस्त्रो का संचलन, कबन्धो का चक्कर काटना, खण्ड-मुण्डो का पृथ्वी पर गिरना, आदि अनेक व्यापारो का रोमांचक वर्णन किया गया है।

3) प्रकृति चित्रण :

पद्मावत मे प्रकृति का चित्रण उद्दीपन रूप मे प्रमुखता से किया गया है। बिम्बग्राही प्रणाली के आधार पर प्रकृति के रम्य एवं भीषण चित्र इसमें प्रचुरता से प्रस्तुत किए गए हैं। उदाहरण के लिए मानसरोदक का वर्णन करते हुए कवि ने उसके रमणीक रूप की झांकी प्रस्तुत की है। यथा :

मानसरोदक बरनौं काहा। भरा समुद अस अति अवगाहा।
पानि मोति अस निरमल तासू। अमृत आनि कपूर सुबासू।।
लंकादीप कै सिला अनाई। बाँधा सरवर घाट बनाई।।

'किलकिला' समुद्र के भयानक रूप का चित्रण भी उन्होंने किया है जिसमें पर्वत जैसी ऊँची उत्ताल लहरें उठ रही हैं और जिसे देखकर ऐसा लगता है कि मानो आकाश टूट पड़ रहा है :

भा किलकिल अस उठै हिलोरा। जनु अकास टूटै चहुँ ओरा।
उठै लहरि परबत कै नाईं। फिरि आवै जोजन सौ ताईं।।

प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण करते हुए कवि के द्वारा नागमती की विरह वेदना का निरूपण इन पंक्तियों मे किया गया है :

खड्ग बीजु चमकै चहुँ ओरा। बुंद बान बरसैं घनघोरा।
दादुर मोर कोकिला पीऊ। गिरै बीजु घट रहै न जीऊ।

4) रहस्यवादी चेतना :

जायसी ने भावात्मक एवं साधनात्मक रहस्यवाद का समावेश अपने काव्य में किया है। वे यह मानते हैं कि परमात्मा रूपी प्रियतम हृदय में ही है, किन्तु कौन है जो उससे मेल करा दे :

पिउ हिरदय में भेंट न होई। को रे मिलाव कहौं केहि रोई ॥

कहीं-कहीं समासोक्ति के माध्यम से भी उन्होंने आध्यात्मिक अर्थ की व्यंजना की है। परमात्मा की ज्योति सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है। सृष्टि की सारी सुन्दर वस्तुएँ उसी के सौंदर्य की छाया हैं। मानसरोदक खण्ड में इसकी अभिव्यक्ति निम्न पंक्तियों में हुई है :

नयन जो देखा कँवल भा निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हँस भा दसन जोति नग हीर ॥

जायसी ने जहाँ हठयोग साधना का उल्लेख कथा प्रसंगों के बीच-बीच में किया है, वहीं साधनात्मक रहस्यवाद माना जा सकता है। सिंहलगढ़ वर्णन खण्ड में ऐसे अनेक स्थल हैं। यथा :

नव पौरी पर दसम दुआरा। तेहि पर बाज राज घरिआरा।

यहाँ सिंहलगढ़ मानव शरीर का प्रतीक है, नौ पौरियाँ जो यहाँ हैं तथा दसवाँ दरवाजा ब्रह्मरन्ध्र

है जहाँ प्रजा का हित (अनहदनाद) बजता रहता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उनके रहस्यवाद पर टिप्पणी करते हुआ लिखा है – "यदि कहीं रमणीय सुन्दर अद्वैती रहस्यवाद है तो जायसी में, जिसकी भावुकता उच्चकोटि की है।"

5) भाव एवं रस निरूपण :-

पद्मावत यद्यपि श्रृंगार रस प्रधान महाकाव्य है यथापि उसमे अन्य अनेक भावों एवं रसों का निरूपण किया गया है। नायिका के सौन्दर्य चित्रण मे तथा नायक-नायिका के मिलन प्रसंगों मे तो श्रृंगार का पूर्ण परिपाक हुआ ही है साथ ही युद्ध वर्णनों मे वीर रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। जायसी ने लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना की है। उनका वियोग वर्णन उत्कोटि का है जिसमे हृदय की पीड़ा की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। यथा :

पिउ सौं कहेहु सन्देसड़ा हे भौंरा हे काग।
सो धनि बिरहै जरि मुई तेहिक धुँआ हम्ह लाग॥

जायसी एक भावुक कवि थे अतः उन्होंने विभिन्न भावो के चित्रण मे सफलता प्राप्त की है। प्रेम भाव विरह के निरूपण मे वे अद्वितीय कहे जा सकते है।

६) अलंकार निरूपण :-

जायसी ने सादृश्यमूलक अलंकारों उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीक, व्यतिरेक, रूपकातिशयोक्ति आदि का अधिक प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त अन्योक्ति तथा समासोक्ति का प्रयोग भी पद्मावत में किया गया है।

उनकी अलंकार योजना काव्य को रमणीयता प्रदान करने के साथ-साथ भावों के उत्कर्ष में भी सहायक सिद्ध हुई है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

रूपक - खड्ग बीजु चमकै चहुं ओरा। बुंद बान बरसहिं घनघोरा।

उपमा - भौर केस वह मालति रानी। बिसहर लुरे लेहिं अरघानी॥

उत्प्रेक्षा - भौंहें स्याम धनुक जनु ताना। जासहुं हेर मार विष बाना।

व्यतिरेक - का सरवरि तेहि देउं मयंकू। चांद कलंकी वह निकलंकू॥

७) छन्द योजना :-

जायसी ने दोहा चौपाई छन्द का प्रयोग पद्मावत में किया है। इतिवृत्तात्मक वर्णनों के लिए यह छन्द सर्वाधिक उपयुक्त माना गया है। जायसी के चौपाई तथा दोहा छन्द में शास्त्रीय नियमों का अवधान कई स्थानों पर मिलता है और उसमें वह शास्त्रीयता

नागो पती को रामचरितमानस में प्रयुक्त दोहा-चौपाई को में उपलब्ध होती है। जायसी ने सात अर्द्धालियों के बाद एक दोहे का विधान किया है।

८) भाषा :-

जायसी ने पद्मावत में ठेठ ग्रामीण अवधी का प्रयोग किया है। यह बोलचाल की अवधी है तथा इसमे अरबी-फारसी के शब्दो की प्रचुरता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार— "जायसी की भाषा देशी साँचे मे ढली हुई, हिन्दुओ के घरेलू भाव से भरी हुई बहुत ही मधुर और हृदयग्राहिणी है।" इनकी भाषा पर संस्कृत के शब्दो का प्रभाव परिलक्षित होता है, साथ ही यह मुहावरेदार भी है।

९) प्रबन्ध सौष्ठव :-

पद्मावत एक महाकाव्य है जिसकी कथा मे प्रबन्ध सौष्ठव विद्यमान है। उसमे एक प्रवाह-पूर्ण अनुबन्ध कथा है तथा प्रासंगिक कथाएं पूर्णरूप से सुसम्बद्ध है। रसात्मक वस्तु वर्णनो की प्रधानता है। कवि को कथा के मार्मिक स्थलो की पहचान है। ऐसे मार्मिक प्रसंग है- नागमती विरह वर्णन, सिंहलद्वीप वर्णन, मानसरोदक खण्ड, आदि। प्रासंगिक कथाएं मुख्य कथा से पूरी तरह सुसम्बद्ध है तथा की दृष्टि से सम्पूर्ण इतिहास इतिवृत्त मे एकरूपता है। जायसी ने कथा के बीच-बीच मे अपनी बहुज्ञता का परिचय देते हुए ज्योतिष ज्ञान, भारतीय

PAGE NO.:
DATE: / /

दर्शन, पाककला, बागवानी, शस्त्रविद्या आदि का भी सुन्दर समावेश किया है।

समग्रत: यह कहा जा सकता है कि सूफी काव्य धारा के इस महाकवि की काव्य दृष्टि अत्यन्त व्यापक थी। लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना करते हुए उन्होंने हिन्दी कवियों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाने में सफलता प्राप्त की है।

मलिक मोहम्मद जायसी (1492 - 1542 ई.)

जायसी की प्रेमभावना

मलिक मोहम्मद जायसी सूफी प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा के प्रमुख कवि हैं। अवधी भाषा में रचित उनका महाकाव्य 'पद्मावत' सूफी काव्य धारा का प्रतिनिधि ग्रन्थ है जिसमे चित्तौड़ के राजा रत्नसेन और सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती के प्रेम का चित्रण किया गया है। सूफी कवियों ने हिन्दू घरों में प्रचलित लोकप्रसिद्ध प्रेमगाथाओं को अपनी काव्य वस्तु बनाया तथा लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना की। रत्नसेन यहाँ जीवात्मा का प्रतीक है और पद्मावती परमात्मा का। सूफी काव्य परम्परा के सभी ग्रन्थों में प्रेम की महत्ता स्वीकार की गई है। ये कवि प्रेम को ईश्वर प्राप्ति का साधन मानते हैं और 'इश्क मजाजी' तक पहुंचने का सन्देश देते हैं।

सूफी मत मे प्रेम का विशेष महत्व है। डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार — "सूफी मत मे ईश्वर की भावना स्त्री रूप मे की गई है। वहाँ भक्त पुरुष बनकर उस स्त्री की प्रसन्नता के लिए सौ जान से निसार होता है, उनके द्वार पर जाकर प्रेम की भीख मंगता है। ईश्वर एक देवी स्त्री के रूप में उसके सामने उपस्थित होता है- इस तरह सूफी मत

मे ईश्वर स्त्री और भक्त पुरुष है। पुरुष ही ईश्वर से मिलने की चेष्टा करता है, जिस प्रकार रत्नसेन सिंघलद्वीप जाकर पद्मावती (ईश्वर) से मिलने की चेष्टा करता है (1)

जायसी द्वारा रचित पद्मावत एक प्रेमगाथा काव्य है जो सूफियो की प्रेम पद्धति पर आधारित है। इस महाकाव्य मे लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना की गई है। पद्मावत के पूर्वार्द्ध मे प्रेम की प्रधानता है, जबकि उत्तरार्द्ध मे ऐतिहासिकता का निर्वाह किया गया है।

जायसी की मान्यता है कि इश्क मजाजी (लौकिक प्रेम) के द्वारा इश्क हकीकी (ईश्वरीय प्रेम) को पाया जा सकता है। रत्नसेन का पद्मावती के प्रति प्रेम इसी प्रकार का है। प्रेमी के हृदय मे प्रिया के प्रति प्रेम उत्पन्न करने के लिए चित्र दर्शन, स्वप्न दर्शन या सौन्दर्य प्रशंसा का आश्रय लिया जाता है तथा प्रेमी प्रिया को पाने के लिए सर्वस्व त्यागकर विघ्न बाधाओं को पार करता हुआ अन्त मे उसे प्राप्त कर लेता है। हीरामन तोते के द्वारा पद्मावती के रूप सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर राजा रत्नसेन उसे पाने को व्याकुल हो गया और सिंहलद्वीप जाकर उसने अन्तत: अनेक कष्ट झेलने के उपरान्त पद्मावती को प्राप्त कर लिया।

जैसे किसी पथिक को अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए कुछ मन्जिलों को पार करना पड़ता है, वैसे ही जीवात्मा को हक (ईश्वर) तक पहुँचने के लिए चार मुकामात (मन्जिलें) पार करनी होती है, जिनके नाम सूफी मत के अनुसार हैं — शरीअत, तरीकत, हकीकत, और मारिफत। इन्हें पार करके ही वह परमात्मा से एकाकार हो जाती है।

जायसी ने 'पद्मावत' में इसी सूफी प्रेम पद्धति को अपनाया है। पद्मावती के अनुपम रूप सौन्दर्य की प्रशंसा से प्रभावित राजा रत्नसेन योगी बनकर सिंहलद्वीप जाता है। मार्ग में समुद्र यात्रा के समय अनेक विघ्न आते हैं, किन्तु उन्हें पार करता हुआ वह अन्तत: पद्मावती को पा लेता है। लौटते हुए रास्ते में फिर विघ्न आते हैं। पद्मावती उससे बिछुड़ जाती है चितौड़ लौटने किन्तु प्रेम की दृढ़ता के कारण उनका पुनर्मिलन होता है चितौड़ लौटने पर राघवचेतन की दुष्टता के कारण अलाउद्दीन बादशाह पद्मावती को पाने के लिए चितौड़ पर आक्रमण कर देता है तथा राजा रत्नसेन को बन्दी बनाकर दिल्ली ले जाता है, किन्तु गोरा-बादल की तत्परता से कारागार से मुक्त होकर चितौड़ लौट आता है। चितौड़ लौटकर राणा देवपाल से उसका युद्ध होता है जिसमें वह वीरगति को प्राप्त करता है तथा राजा रत्नसेन की दोनों रानियाँ - नागमती एवं पद्मावती उसके साथ

सती हो जाती है। इस प्रकार राजा रत्नसेन रूपी आत्मा 'कना' होकर 'अनलहक' की अधिकारिणी बनकर पद्मावती रूपी परमात्मा से एकाकार हो जाती है।

जायसी ने पद्मावती को परमात्मा मानकर उसके रूप-सौन्दर्य को अलौकिक हुआ संसार में व्याप्त दिखाई है। संसार में जो कुछ सुन्दर है सब उसी का प्रतिरूप है। यथा:

रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती।
रतन पदारथ मानिक मोती॥

मानसरोदक खण्ड के अन्तर्गत पद्मावती रूपी परमात्मा के अलौकिक सौन्दर्य को सर्वत्र व्याप्त दिखाते हुए वे कहते हैं:

"नयन जो देखा कँवल भा निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हंस भा दसन जोति नग हीर॥

जायसी ने इस प्रेम-उदधि को अत्यन्त विशाल बताया है जिसकी थाह पाना असम्भव है। यथा:

प्रेम समुद जो अति अवगाहा जहाँ न वार न पार न थाहा।

जायसी ने पद्मावत में स्थान-स्थान पर प्रेम

तत्व का निरूपण किया है। प्रेम की प्राप्ति से दृष्टि निर्मल और आनन्दमय हो जाती है। पद्मावती के रूप की प्रशंसा सुनकर रत्नसेन के हृदय में जो प्रेम संचारित होता है उसके प्रभाव का वर्णन निम्न पंक्तियों में है:

तीनि लोक चौदह खंड सबै परै मोहि सूझि।
प्रेम छाँड़ि नाहि लोन कछु जौ देखा मन बूझि॥

प्रेम के इस क्षीर सागर को जो पार करता है वे 'जीव' संज्ञा को त्यागकर शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं।

जो नाहि खीर समुद्र महं परे।
जीव गँवाइ हँस होइ तरे।

जायसी का मत है कि प्रेम की चिनगारी यदि हृदय में पड़ गई और उसे सुलगाते बन पड़ा तो उस अद्भुत अग्नि से सारे लोक विचलित हो जाते हैं:

मुहमद चिनगी प्रेम कै सुनि महि गगन डेराइ।
धनि बिरही औ धनि हिया जहँ अस अगिनि समाइ॥

अतः प्रेम की यह चिनगारी गुरु ही हृदय में डाल पाता है, किन्तु उसे सुलगाना (साधक) का काम है

गुरु से ईश्वर का आभास मात्र कराता है, किन्तु भावना के उत्तरोत्तर उत्कर्ष द्वारा शिष्य से पूर्णता तक जो जाता है।

प्रेमी को प्रिय के साक्षात्कार के अति-रिक्त और कोई कामना नहीं होती है। न उसे स्वर्ग की आकांक्षा होती है और न नरक का भय। राजा रत्नसेन भी इसी स्थिति को पहुंच गया है :

ना हौं सरग क चाहौं राजू। ना मोहि नरक सेति किछु काजू।
चाहौं ओहिकर दरसन पावा। जेइ मोहि आनि प्रेम पथ लावा।।

सच्चा प्रेम क्या है इसका वर्णन हीरामन तोते के मुख से भी जायसी ने कराया है। सच्चा प्रेम एक बार उत्पन्न होकर फिर समाप्त नहीं होता। यद्यपि उसमें दुःख झेलना पड़ता है पर जिस पर एक बार प्रीति बेलि छा गई उसके हृदय मे और किसी भाव के लिए स्थान ही नहीं रहता। वह कहता है :

प्रीति बेलि जिनि अरुझै कोई। अरुझे मुआ न छूटे सोई।।
प्रीति बेलि ऐसे तन डाढ़ा। पलुहत सुख बाढ़त दुख बाढ़ा।।
प्रीति अकेलि बेलि चढ़ि छावा। दूसर बेलि न सँचरै पावा।।

निश्चय ही जायसी की प्रेम भावना अत्यन्त सात्त्विक है तथा वह लौकिकता से प्रारम्भ होकर

अलौकिकता की ओर अग्रसर हुई है।

जायसी ने प्रेम की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए उसे ईश्वर का रूप सिद्ध किया है। जायसी ने फारसी प्रेम पद्धति का आधार ग्रहण करते हुए प्रेम की पीर अर्थात विरह वेदना का अत्यन्त मार्मिक चित्रण 'पद्मावत' में किया है। नागमती की विरह वेदना सम्पूर्ण संसार में व्याप्त दिखाई गई है, यहाँ तक कि उसके विरह की आग में जलकर बादल काले हो गए, राहु-केतु, सूर्य-चन्द्र भी उस विरहाग्नि में जल उठे:

अस परजरा विरह कर गठा। मेघ साम भए धुआँ जो उठा।
दाढ़ा राहु केतु गा दाधा। सूरज जरा, चाँद जरि आधा।।

विरह ताप मानं प्रेम की पीड़ा का अतिशयोक्तिपूर्ण चित्रण पद्मावत में उपलब्ध होता है।

जायसी की प्रेम पद्धति में लौकिक कथा के बीच-बीच में आध्यात्मिक संकेत होने के कारण यह काव्य ग्रन्थ एक 'समासोक्ति' है। वे सिंहलगढ़ को मानव शरीर का प्रतीक बताते हैं। जिसमें नौ चक्रों का विधान है। यही नहीं सम्पूर्ण कथा का आध्यात्मिक परिहार भी इसमें किया गया है। यथा:

तन चितउर मन राजा कीन्हा । हिय सिंहल बुधि पदमिनि चीन्हा ।
गुरु सुआ जेहि पंथ देखावा । बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा ॥
नागमती यह दुनिया धन्धा । बाँचा सोइ न एहि चित बन्धा ॥
राघव दूत सोई सैतानू । माया अलाउदीन सुल्तानू ॥

इन पंक्तियों से पद्मावती को बुद्धि का प्रतीक, चितौड़ को शरीर, मन- राजा रत्नसेन, हृदय- सिंहलद्वीप, गुरु- हीरामन तोता, संसार- नागमती, शैतान - राघवचेतन और माया- अलाउद्दीन है। यद्यपि इन प्रतीकों के आधार पर सम्पूर्ण कथा की व्याख्या नहीं की जा सकती, किन्तु इतना निश्चित है कि जायसी ने जानबूझकर कथा के बीच में अप्रस्तुत अर्थ का समावेश करते हुए आध्यात्मिक संकेत दिया है। इसीलिए सम्पूर्ण कथा को अन्योक्ति न मानकर समासोक्ति कहना समीचीन है।

उक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जायसी की प्रेम पद्धति का मूल आधार तो भारतीय है, किन्तु उसमें सूफी प्रेम पद्धति का मिश्रण उन्होंने कर दिया है। केवल कथा प्रस्तुत करना जायसी का उद्देश्य नहीं था, अपितु कथा के माध्यम से सूफी साधना पद्धति से लोगों को परिचित कराना भी उनका उद्देश्य था। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि जायसी की प्रेम पद्धति में लौकिक प्रेम तथा आध्यात्मिक प्रेम का सफल समन्वय किया गया है।